'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ४३ | वाराणसी, शनिवार, ११ अप्रैल, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

रामगढ़ (राज०) ता० २०-१-'५९

विश्व-नागरिकता का विचार ही विज्ञान-युग का वास्तविक विचार है

भारत से आशा

अपना देश आजाद हुए अब ११ साल हो गये, १२वाँ चल रहा है। आजादी के पहले अपने देश की गिनती दुनिया के नक्शे में थी ही नहीं। दुनिया के नक्शे में इंग्लिश-साम्राज्य का एक लाल रंग था, उसी में इंग्लैंड और हिन्दुस्तान के नक्शे रँगे हुए थे। जैसे इंजिन के साथ-साथ डिब्बे जाते हैं, वैसे ही अंग्रेजों ने जो-जो काम किये, उस में हमारी भी सम्मति मान ली गयी। अंग्रेजों ने जिन-जिन राष्ट्रों से लड़ाई की, उनके साथ हिन्दुस्तान को भी लड़ना पड़ा। गुलाम देश का स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं होता। गुलामों और बैलों का कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं है। किसान बैल से जो काम लेना चाहेगा, वह काम बैल करेगा। खेत में क्या बोना है, उसका सवाल बैल के सामने नहीं है। उसकी सलाह भी नहीं पूछी जाती। वही हालत हमारी थी। लेकिन आजादी के बाद भारत की गिनती दुनिया में एक देश के नाते हुई। अब दुनियावाले भी भारत से किसी नयी चीज की अपेक्षा रखने लगे हैं। इस वक्त दुनियावाले दुःखी हैं, भयभीत हैं। सारे देश दो पक्षों में बँटे हुए हैं। कुछ देश अमेरिका के पक्ष में हैं, तो कुछ देश रूस के पक्ष में। प्रत्येक एक-दूसरे से डरते हैं। किसी को निर्भयता का अनुभव नहीं हो रहा है। ऐसी हालत में क्या हिन्दुस्तान विश्व को कोई राह दिखायेगा ?

हिन्दुस्तान में आजादी के बाद जो कुछ हमने छोटा-बड़ा काम किया, उसका असर दुनिया पर कुछ-न-कुछ तो हुआ ही। हम किसी पक्ष में सम्मिलित नहीं होते, अपनी स्वतन्त्र हस्ती और विचार रखते हैं। उसकी कद्र दुनिया करती है। यूरोप, अमेरिका आदि देशों से लौटकर आनेवाले लोग कहा करते हैं कि भारत के बारे में दुनिया के लोगों ने आशा रखी है। यहाँ की जो विदेशी नीति है, वह अच्छी नीति है। उससे दुनिया को शांति की राह मिलेगी।

भारत में जो भूदान, ग्रामदान का काम चला है, उससे भी दुनिया के लोगों को लगा है कि इस काम में कुछ ऐसी चीज है, जिससे आज की देश-देश की समस्याएँ हल करने का मार्ग खुल जायेगा। इसलिए बीच-बीच में हमारी यात्रा में यूरोप, अमेरिका एशिया आदि मुल्कों के कई लोग आते हैं। हमारे साथ घूमते हैं और फिर अपने-अपने देशों में जाकर ग्रन्थ लिखते हैं, आर्टिकल्स भी लिखते हैं और आशा रखते हैं कि दुनिया में शांति-स्थापना के लिए इसमें से कुछ तथ्य निकलेगा। अब भारत को दुनिया में कुछ काम करने का मौका मिला है।

विश्व-नागरिकता की ओर

हमारे सामने लड़के बैठे हुए हैं। ये स्कूल में पढ़ते हैं। ये स्वतन्त्र भारत के नागरिक हैं। इतनी उम्र में भी स्कूल में पढ़ने के बावजूद भी हम गुलाम भारत में थे और हमारे सामने यही समस्या थी कि देश गुलामी से कैसे मुक्त हो और उसके लिए हम क्या कर सकते हैं ? स्कूल में हमें अनेक विषयों का ज्ञान सिखाया जाता था, लेकिन हमारा चित्त इसी में रहता था कि देश कैसे मुक्त होगा और उसके लिए हम क्या करेंगे ? बचपन ही से हमारा लक्ष्य भारत को आजाद बनाने का रहा है। अभी के लड़के तो स्वतन्त्र भारत के विद्यार्थी हैं। इसलिए ये विश्व-नागरिक बन सकते हैं। अब यदि हम अपने देश को ठीक ढंग से बनायें, शांति की ताकत कायम करें, तो अपना असर कुल दुनिया पर डाल सकते हैं। यहाँ जो भी चीज करें, वह फौरन ही दुनिया में फैलेगी। अब दुनिया और हमारे बीच कोई पर्दा नहीं रहा। यहाँ के अच्छे काम दुनिया में फैलेंगे और उसका दुनिया पर असर होगा। बुरे काम का भी दुनिया पर असर होगा। अच्छे काम और बुरे काम अब सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि दुनिया के बाजार में उपस्थित किये जायेंगे। इसलिए हम कदम-कदम पर सोचें और ऐसा काम करें, जिससे औरों को भी यह मालूम पड़े कि भारत की ताकत एक काम में जुट गयी है। यहाँ की लगभग ३७ करोड़ लोगों की जमात अपने देश का वैभव बढ़ाने के लिए और कुल दुनिया की सेवा के लिए—शांति और स्वतन्त्रता की स्थापना करने के लिए अग्रसर हो रही है।

महाराज अशोक के जमाने में धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम भगवान बुद्ध ने शुरू किया था। वह आर्य-संस्थाओं के जरिये भारत में फैला। पिछले दो-ढाई हजार साल में दूसरा ऐसा मौका नहीं मिला, जैसा अभी मिल रहा है। अशोक के जमाने में जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया गया था, वह तो हिन्दुस्तान में सीमित रहा; क्योंकि उस जमाने में विज्ञान नहीं था। लेकिन विज्ञान ने आज प्रचार का दरवाजा खोल दिया है। विचार का संचार फौरन दुनिया में हो जाता है। उस हालत में अशोक के जमाने में भी

जो मौका हिन्दुस्तान को नहीं मिला था, वह आज हिन्दुस्तान को मिला है।

यह मत समझिये कि सीकर जिला हिन्दुस्तान के एक कोने में है और दुनिया के साथ उसका सम्बन्ध भी नहीं है, बल्कि आप यह समझें कि इस समय आप दुनिया के मध्य स्थान में हैं और जो भी काम करते हैं, उसका प्रभाव सारे विश्व पर होता है। आप अगर झगड़ते हैं, तो इंग्लैण्ड के लोगों को उसकी जरूरत नहीं है—वह तो वहाँ भी चलते हैं। द्वेष चलता है, स्वार्थ चलता है, तो उसकी भी दुनिया को जरूरत नहीं है। इसलिए अब आप कोई ऐसा ठोस कदम उठायें, जिससे दुनिया को मार्ग मिले।

इंग्लिश में हमने एक भी आर्टिकल नहीं लिखा, लेकिन जर्मन, फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि में हमारे आन्दोलन की बातें फैल गयीं? 'अब तो बात फैल गयी, जाने सब कोई'—क्योंकि दुनिया को उसकी प्यास है। कहीं भी हम कुआँ बना दें, तो प्यासे लोग समझते हैं कि इसकी जरूरत है। हमारे सामने सवाल यह है कि आपके गाँव में आप कौन-सा ऐसा काम कर रहे हैं, जिससे दुनिया के नागरिक के नाते आप दुनिया को कुछ दे सकें? हम भोजन करते हैं, खाना खाते हैं, सिनेमा देखते हैं, और अन्य स्वार्थ भी साधते हैं—लेकिन ये सब प्रवृत्तियाँ दुनिया के लिए मार्गदर्शन का काम नहीं कर सकतीं।

चम्मच और मुट्ठी

एक छोटी-सी बात हमने हर घर में सर्वोदय-पात्र रखने के सम्बन्ध में कही है। उसमें आप हर रोज मुट्ठीभर अनाज डालते हैं और शांति की ताकत बढ़ाते हैं, तो उसका असर कुल दुनिया पर पड़ेगा। एक भाई हमसे मिलने आये थे—आर्थर्क् गुडफ्रेन्ड। उन्होंने अपनी एक किताब में जिक्र किया है कि समाज की ताकत बनाने के लिए क्या किया जाय? 'स्पूनफुल'—एक चम्मचभर अनाज रोज समाज के लिए देना। वे हाथ से नहीं खाते, चम्मच से खाते हैं। इसलिए उन्होंने चम्मच का ही उल्लेख किया है। इतनी छोटी-सी बात से कितनी ताकत पैदा हुई और कितना काम हुआ, इसका विवरण उनकी पुस्तक में है। उन्होंने बड़े प्रेम से बताया कि अगर भारत में होनेवाला हमारा यह काम यशस्वी हो जाता है, तो अखिल विश्व में शांति-स्थापना की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण काम होगा। गरीबों के लिए एक चम्मचभर की बात आयी और एक मुट्ठी की भी बात आयी है, पर मूल सवाल चम्मच का नहीं है और न मुट्ठी का ही है। पर सवाल यह है कि क्या कुल-के-कुल लोग इस काम में लगे हैं?

हिन्दुस्तान में तीन महीने बारिश होती है और हर जगह की जमीन तर हो जाती है। बारिश में क्या पानी के नल बरसते हैं? नहीं, एक-एक बिन्दु बारिश होती है, लेकिन वह सब जगह होती है और उसमें से ताकत बनती है। इस छोटे काम में ही बहुत-सी संभावनाएँ छिपी हुई हैं। वैसे ही यह एक मुट्ठीभर अनाज तो पानी का बिन्दु है। यह काम संकल्प करने से हो जाता है। इससे लोगों में आत्मविश्वास जागृत होगा।

लोग पूछते हैं कि 'एक मुट्ठी से क्या होगा? यह अनाज कहाँ जायेगा?' आपके घर से बाहर जायगा—यह पहली बात है। दुनियाभर से यहाँ पैसा आता है और कॉलेज खोलते हैं। एक गंगानगर का भाई हमसे मिलने आया। वह कहता था कि वहाँ समृद्धि बढ़ रही है। इस समस्या का समाधान कैसे किया जाय? जो यूरोप, अमेरिका, इंग्लैण्ड में समस्या है, वह गंगानगर में पैदा हुई। कुछ सूझता नहीं, चित्त में समाधान नहीं, शांति नहीं, प्रेम नहीं और पैसा बढ़ रहा है। यह है आज समाज की हालत।

"पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।"

खतरा से खतरा—नौका में पानी बढ़ा, तो खतरा है; घर में संपत्ति बढ़ी, तो खतरा है। नौका में का पानी बाहर जाना चाहिए, तभी तो संकट टलेगा। वैसे ही घर में संपत्ति बढ़ी, तो वह बाहर जानी चाहिए। एक मुट्ठी से कोई घर खाली नहीं होता है। लेकिन इससे काम का आरम्भ हो जाता है। बाल-बच्चों को सेवा की तालीम मिलती है। मानव-जन्म मिला है—किस लिए? सेवा के लिए, घर भरने के लिए नहीं। यह तालीम देते हैं और प्रत्यक्ष काम करते हैं, तो आप सेवा-धर्मी हो गये।

ध्यान देने की बात

रामगढ़ में बाहर से पैसा आता है। बड़े-बड़े मकान हैं, कॉलेज हैं, लेकिन यहाँ के लोग दूसरों के लिए क्या करते हैं? जो कुछ चलता है, वह अपने-अपने घर के लिए चलता है।

आज हमें दो साँड दिखाये गये। उनको देखकर मैंने 'जय शंभू' 'जय-महादेव' की घोषणा की। रामगढ़ में हमको साँडों का दर्शन हुआ, मनुष्यों का नहीं! यहाँ मनुष्य कहाँ हैं? हम ३६ करोड़ हैं, वे सभी मनुष्य हैं क्या? साँड की सेवा करने से हम साँड बन सकते हैं। भगवद्गीता में कहा है कि हम जिसकी उपासना करते हैं, उसका गुण हममें आ जाता है, हम वैसे बनते हैं।

यहाँ की म्युनसिपलिटी ने तय किया है कि यहाँ साँड़ तैयार किये जायँ, लेकिन क्या उसने यह भी सोचा है कि हर बच्चे को दूध मिलेगा या नहीं। गाय की नस्ल सुधारने के बावजूद भी बच्चों को दूध न मिल सका, तो उसका उपयोग ही क्या है? कुछ अच्छे साँड बनायेंगे, कुछ-कुछ गायों की नस्ल सुधारेंगे और दूध पीयेंगे श्रीमान। गरीबों के बच्चों को दूध नहीं मिलेगा। हम चाहते हैं कि हर गरीब के बच्चे को दूध मिले और उसके साथ-साथ श्रीमानों को भी मिले। श्रीमान दूध पीते हैं और गरीब को नहीं मिलता है, तो समाज कैसे सुखी होगा? गरीब-अमीर सभी सुखी होंगे, तभी मनुष्य बनेंगे। केवल साँड़ बनायेंगे, तो क्या उसे देखने के लिए अमेरिका का मनुष्य आयेगा? क्या अमेरिका में उसकी कमी है? वहाँ विज्ञान कम है क्या? कुल यूरोप में गाय के सिवा और दूसरा कोई दूध नहीं मिलता। राजस्थान में दूसरे प्रांतों से ज्यादा दूध है और इससे दुगुना है यूरोप में। फिर यूरोपवाले आपके साँड़ देखने क्यों आयेंगे?

अब विदेशी लोग भूदान, ग्रामदान देखने के लिए आते हैं। जिस मालकियत के लिए लोग लड़ते हैं, कोर्ट में जाते हैं, वह मालकियत यहाँ के लोग छोड़ रहे हैं। अभी तक लगभग पाँच हजार ग्रामदान हुए हैं। डूंगरपुर में १२५ ग्रामदान हुए हैं। यह आरंभमात्र है। गंगोत्री से गंगा निकलती है। वह छोटी-सी धारा पवित्र होती है। बड़ा नाला हो, तो भी वह गंदा होता है। इसलिए लोग छोटी-सी गंगाजी को देखने आयेंगे, नाले को देखने नहीं आयेंगे। इस भाँति सभी भूदान देखने आते हैं। इसमें वे देखते हैं कि जहाँ छीनने की बात चल रही है, वहाँ सहर्ष दान भी दिया जा रहा है, तो उन्हें बहुत आश्चर्य होता है।

मैं साँड की भी कद्र करता हूँ। कोई साँड बनायेंगे, तो वह अच्छा काम है। आप लोग यह काम करते हैं। उसके लिए आप पैसा भी देते हैं। जानवरों के प्रति दयाबुद्धि भी होनी चाहिए। गाय, साँड़ आदि पशुओं के लिए तथा कबूतर आदि के लिए अनु-

कम्पा करने से ही दयाबुद्धि का विकास हुआ है। लेकिन ऐसी दया करनेवाले ही अधिकांश लोग व्यापार में जनता को चूसते हैं, लूटते हैं। इससे दया का असली रूप प्रकट होने के बजाय एक हास्यास्पद रूप ही प्रकट होता है। दुनिया में माँ का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। माता अपने बच्चे के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती है। घर में एक पाव दूध होता है, तो वह स्वयं न पीकर बच्चों को पिलाती है। वह खुद फाँका करेगी, लेकिन पहले अपने बच्चे को खिलायेगी। यह कोई पारमार्थिक मिसाल नहीं है। हर घर की अपनी बात है। माँ की तरह ही एक जमात दूसरी जमात के लिए त्याग करती है, एक कुटुम्ब दूसरे कुटुम्ब के लिए त्याग करता है, वहाँ उसका गौरव दुनिया में होता है। रामगढ़ का गौरव भी तब होगा, जब एक-एक अंश हम अपने घर से समाज के लिए देंगे। दुनिया की सेवा के लिए हम इतना त्याग करना चाहते हैं, ऐसा संकल्प हम करेंगे।

महत्त्व ग्रन्थों का नहीं, आचरण का है

लोग कहते हैं कि बाबा आपकी तो पैदल यात्रा चली है, लेकिन इसका प्रचार कौन करेगा? सीकर में एक निवेदक है। 'एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति।' सीकर में एक चन्द्र है और गंगानगर में एक भी नहीं। सात लाख की आबादीवाले गंगानगर शहर में क्या एक भी सेवक नहीं मिल सकता? हम लोग निष्ठापूर्वक काम करें, तो सेवक मिल सकते हैं। हम एक नहीं, अनंत हैं। जिस किसी के पास जायँ, और कहें कि करो काम। आदर्शों के प्रति रही हुई आस्था ही जबान में प्रकट होनी चाहिए।

हम आपके पास एक धर्म का विचार पहुँचाने आये हैं। हरएक को जमीन की सेवा करने का मौका मिलना चाहिए, यह एक धर्म-विचार है। लोग विचार सुनते हैं, लेकिन उसे कार्य-रूप में परिणत नहीं करते। 'बाबा बड़े अच्छे वक्ता हैं, बहुत विद्वान हैं, ऐसा कह कर व्याख्यानों को हजम कर लेते हैं। यहाँ के लोगों ने कई ग्रन्थ हजम कर लिये हैं। 'समय-सार' नाम की किताब हमको अजमेर में भेंट दी गयी। उसमें बहुत गहरा विचार है। हमारे पास धर्म-ग्रन्थों की कोई कमी नहीं है। लोग बारीक-सूक्ष्म विचार करते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष आचरण का काम आये, तब पीछे हटने लगते हैं। विचार करते समय वेदान्त, समन्वय और अनेकान्तवाद जैसे शब्दों का उपयोग करने की आदत पड़ गयी है। शब्द की कोई कमी नहीं है। इसलिए अब तो प्रत्यक्ष काम होना चाहिए। जिससे हम दुनिया को शान्ति की राह दिखा सकें।

मनु महाराज ने कहा है:

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

याने हमारे देश के अच्छे लोगों से पृथ्वी के मानव चारित्र्य की तालीम पायेंगे। इसकी प्रतीति गांधीजी के समय में हो भी गयी। और हमने यह भी जान लिया कि हमारी आवाज दुनिया में हर जगह पहुँच सकती है।

हम स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं, इसलिए अब यहाँ हैं। विश्व-नागरिक बनने का मार्ग हमारे लिए खुल गया है, इस दृष्टि से यहाँ काम होना चाहिए।

◆◆◆

पाणशीणा (झालावाड़) १४-१२-'५८

प्रार्थना-प्रवचन

देश-स्वराज्य की सार्थकता ग्राम-स्वराज्य में ही संभव!

हिंदुस्तान में जो सभाएँ होती हैं, उनमें हम एक प्रकार की विविधता पाते हैं। इन सभाओं में जिस प्रकार का समाज देखने में आता है, उस प्रकार का समाज शायद अमरीका आदि देशों में न दीखता हो। यहाँ के समाज में कितने ही लोग नंगे सिर होते हैं, तो कितनों के सिर पर लाल, पीले, हरे रंग के फेंटे रहते हैं। जो कुछ भी हो, इस प्रकार की विविधता में भी एक प्रकार का आनंद आता है।

हमारे यहाँ के लोग बड़े ही आजाद विचारों के हैं। वे पूरी तरह से मानसिक स्वतंत्रता के अनुसार चलते हैं। जैसा जिसके मन में आता है, वैसा वह पोशाक धारण करता है। जिस तरह की रहन-सहन जिसे पसंद है, वह उस तरह की रहन-सहन का आश्रय लेता है। जिसके मन में जिस तरह का खान-पान भाता है, वह वैसा आचरण करता है। यहाँ तक कि भजन भी लोग एक स्वर से नहीं गाते, जो लय जिसको रुचिकर लगती है, वह उसी में भजन गाता है। अमुक संगीतज्ञ ने उसे अमुक राग-लय में गाया है, इसलिए दूसरा भी उसी राग-लय में गाये, यह आवश्यक नहीं है। लेखक का काम केवल गीत लिखभर देना है। गानेवाले जैसा चाहें, वैसा बैठाकर उसे गायें। लेखक में एक गुण होता है, तो गायक में दूसरा। इस प्रकार हमारे यहाँ हरएक को अपनी बुद्धि का विकास करने की छूट है। साथ ही साथ उसे अपने चित्त का भी विकास करने का अवसर मिल जाता है।

मुक्ति तथा शक्ति के उपासक

हम लोग स्वभावतः ही मुक्ति को प्राधान्य देते हैं। उसे प्राप्त करने के लिए हममें से विभिन्न लोग विभिन्न उपायों का आश्रयण करते हैं। हर व्यक्ति भिन्न साधना, तपश्चर्या से उसे प्राप्त करना चाहता है। मंत्र, भजन, पंथ, उपासनाएँ आदि भिन्न-भिन्न तरीके हैं, किंतु लक्ष्य सबका मुक्ति ही है। अपने किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार ही मनुष्य को अच्छा या बुरा फल मिलता है। उसी प्रकार वह अकेला ही जनमता है और मरता भी अकेला ही है। इसीलिए वह अपने लिए अपने योग्य मार्ग को ढूँढ़कर मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। ऐसा करना एक महान् गुण ही है।

विदेशों में एक गीत को प्रायः एक ही निश्चित राग-लय में अलापा जाता है। ऐसा करना भी एक गुण ही है। क्योंकि एक ही राग-लय में गाये हुए गीत को गाने और सुनने के लिए मनुष्यों के झुंड के झुंड एकत्र हो जाते हैं। इस प्रकार वहाँ की जनशक्ति अत्यंत बढ़ी हुई रहती है। यद्यपि काठियावाड़ में रास वगैरह एकत्र होकर लोग गाते हैं, किन्तु अधिकांश भारत में ऐसी प्रथा नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विदेशों में किसी भी सेवा के समय लोग एकत्र हो सकते हैं। यही कारण है कि वे अधिक-से-अधिक सेवा-कार्य कर लेते हैं। विदेशों में हमारे जैसी पोशाक तथा खान-पान आदि में विविधता नहीं है। सभा में अगर एक ने टोपी पहनी होगी, तो सभी के सिर पर टोपी दीखेगी। सबका पोशाक एक जैसा रहेगा। इस प्रकार एक वर्दीधारी सेना के आने पर हम अपने को जितना शक्तिशाली हुआ मानते हैं, एक रूप होने के कारण साधारणतः उससे कहीं अधिक शक्ति का अनुभव विदेशी लोग करते हैं।

हम गुण-ग्राही बनें

इस प्रकार तुलना करने पर हम देखते हैं कि हमारे देश तथा विदेश—दोनों में ही एक विशिष्ट गुण है। हमारे देश का गुण है—मुक्ति तथा विदेश का गुण है—शक्ति। हमें अपना गुण न खोकर उनके गुण को भी ग्रहण कर लेना चाहिए। इसी में बुद्धिमानी है। मैं यह कहना नहीं चाहता कि अपनी स्वतन्त्रता खोकर अपने विचारों का दमन कर एक ही होटल में एक ही ढंग का खाना खायें। मेरा मतलब तो यह है कि सभी स्वतंत्र रूप से भजन गाते हुए, इच्छानुसार भोजन करते हुए, एवं मन-पसंद पोशाक पहनते हुए विदेशी लोगों के गुणों को ग्रहण करें। अपना मुक्ति की ओर का आकर्षण कम न करें। मुक्ति की ओर से मुख मोड़कर अगर हम उनके गुण-ग्रहण में तत्पर हों और उसे ग्रहण न कर पायें, तो 'घर के न घाट के' हो जायँगे। इसलिए आज की आवश्यकता के अनुसार खूब सावधानीपूर्वक हम अपने को बदल लें।

एक-दूसरे की मदद अपेक्षित

आज हम लोग अपना काम वक्त पर तथा अच्छी प्रकार कर लेते हैं, इसका श्रेय आधुनिक उपकरणों को ही है। अगर हमारे पास घड़ी न होती, तो प्रार्थना में ठीक समय पर हाजिर होना असंभव था। इसी प्रकार कलम-दवात के सहारे जल्दी-जल्दी लिखा नहीं जा सकता, इसलिए फौन्टेनपेन की जरूरत रहती है। इन सब चीजों से हमें बड़ा आराम मिलता है तथा हम अधिक से अधिक काम को कम से कम समय में कर लेते हैं। पुराने जमाने में ये चीजें उपलब्ध नहीं थीं। और आज इनके बिना हमारा काम अड़ जाता है। इस प्रकार हमने यह देखा कि ये चीजें बहुत ही उपयोगी हैं। इनको बनाने का उपाय भी सोचना आवश्यक है। मैं अकेला तो इन्हें बना नहीं सकता। इसके लिए कारखानों की आवश्यकता होगी। कारखानों में सैकड़ों लोग काम करें, तभी यह सम्भव है। इसी प्रकार खेती का काम भी अकेले से होना सम्भव नहीं है। खेत में पानी देने के लिए सैकड़ों लोगों की जरूरत है। अतः सभी को मिलकर पानी की योजना पर विचार करना चाहिए। यही बात गाँव के व्यापार-कार्य से भी सम्बन्धित है। अगर एक व्यक्ति अपनी चीज बाजार में बेचे, तो उसे उचित मूल्य नहीं मिल सकता। गाँवभर की योजना बनाकर उसके द्वारा माल बेचना ही उचित होगा। इसीसे उचित मूल्य भी मिलेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के समाज का हरएक व्यक्ति दूसरे की सहायता की अपेक्षा रखता है। किसी का भी एक दूसरे की मदद के बिना चल नहीं सकता।

सरकार की अपेक्षा सहकार-शक्ति ही श्रेष्ठ

जिस प्रकार मारवाड़ में पाँच-पाँच मील की दूरी पर कुएँ होते हैं, उसी प्रकार पुराने जमाने में ब्राह्मण लोग भी दूर-दूर रहा करते थे। उनके पास भागवत की एक-एक हस्तलिखित प्रति रहा करती थी। भागवत सुनने के लिए लोग उनके पास जाया करते थे। किसी को आवश्यकता होती, तो वे नकल भी कर लेते, किंतु आज तो प्रेस की कृपा से एक साथ ही भागवत की दस-दस हजार प्रतियाँ निकलती हैं। घर बैठे हम उसे केवल १०-१२ रुपये में ही प्राप्त कर सकते हैं। लोगों को भागवत की पुस्तक की जरूरत रहती है, इसलिए आज प्रेस की भी सख्त जरूरत है। इस प्रकार हमारे समाज को हरएक की आवश्यकता है और उसे हासिल करने के लिए सहकार-शक्ति ही सर्वोत्तम उपाय है। जिस प्रकार यूरोप, अमरीका में सहकार की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है, उसी प्रकार हमें भी करना होगा। हमें भी उठने-बैठने, प्रार्थना करने आदि सभी कामों में सहकार करना होगा। अगर हम यह समझने लग जायँ कि सरकारी योजना ही सब कार्य कर देगी, तो हमें कभी सफलता न मिलेगी। सरकार की शक्ति की अपेक्षा सहकार की शक्ति ही श्रेष्ठ है। उसका विनियोग करने के लिए हम ऐसी योजना बनायें, जो सारे गाँव को एक कर दे। जब हम ऐसा कर सकेंगे, तभी वैज्ञानिक साधनों का समुचित उपयोग कर सकेंगे, अन्यथा नहीं। अगर हम ऐसा न कर सके, तो उनका उपयोग दूसरे देश करेंगे और हमारा देश शोषण के चंगुल से कभी छुटकारा न पा सकेगा। फिर हमारे गाँव भी कैसे टिक सकेंगे? इसलिए सभी छोटे-छोटे गाँव सहकार करें तथा आपस में एक परिवार की भावना रखें।

आत्मज्ञान तथा विज्ञान

जिनमें पाँच-पाँच सदस्य हैं, ऐसे कई परिवार गाँव में हैं। उनमें से किसीके पास भूमि होती है, तो किसीके पास नहीं। हरएक अपनी ही स्वार्थपूर्ति में लगा रहता है। इसीसे आज सुख नहीं बढ़ रहा है। इस समय मोक्ष की आकांक्षा रखनेवाले साधु लोग भी साधना के नाम पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगे हैं। उनके इस आचरण से मुक्ति का गुण दिखाई पड़ सकता है, लेकिन उससे समाज का कल्याण नहीं हो सकता। व्यक्ति के साथ ही साथ और सभी मुक्ति-मार्ग पर अग्रसर हों, इसके लिए भी हमें प्रयत्न करने चाहिए। उसके लिए हमें पश्चिमी देशों का अनुसरण करना होगा! हमारे यहाँ के भक्त लोग एक साथ भोजन करते थे तथा भजन करते थे। यहाँ गरबा, रास आदि भी सामूहिक रूप से होता है। लेकिन इतने से काम नहीं चलने का। यह तो प्रारम्भमात्र है। हमें अपना पूरा जीवन एक सरीखा बनाना होगा—पूर्ण स्वावलंबी। हम अपनी सारी आवश्यकताएँ गाँव से ही पूरी करें। गाँव में जो तेल, गुड़ बनता है, उसे ही काम में लायें। गाँव के ही मोची से जूते, बुनकर से कपड़े लिया करें। सब एकत्र होकर गाँव का हित सोचें। इस प्रकार जब तक गाँव का स्वराज्य हम गाँववाले अपने ही हाथों नहीं चलायेंगे, तब तक गाँव का टिक सकना मुश्किल है। इस वैज्ञानिक युग में हमें अपने आपको टिकाने के लिए गाँव की चीजों का ही उपयोग करते हुए जमीन पर सबका हक मानकर सहकारिता से काम करना होगा तथा ग्राम-संकल्प करना होगा। हमारे देश की शक्ति है आत्मज्ञान तथा यूरोप की शक्ति है विज्ञान। हमें इन दोनों का समन्वय करते हुए कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ना है। इन दोनों शक्तियों को एक साथ प्राप्त करने के लिए हमें सामूहिक रीति से काम करना होगा और साथ ही साथ स्वतंत्र विकास का आदर्श भी सामने रखना होगा।

इस काठियावाड़ के लोग अफ्रिका, जावा, सुमात्रा तक पहुँचे हुए हैं। मैंने तो इतना भी सुना है कि उनकी गायें भी ब्राजिल तक पहुँच चुकी हैं, इसीसे पता चलता है कि यहाँ के लोग कितने खुले हृदय के हैं? यह प्रदेश हिन्दुस्तान में है, इसलिए इसे हिन्दुस्तान के गुण ग्रहण करने चाहिए और यह हिन्दुस्तान के पश्चिम में है, इसलिए इसे पश्चिम याने यूरोप के भी गुण ग्रहण करने चाहिए। अगर ऐसा हो, तो सौराष्ट्र धर्मशील, भक्तिमान और लक्ष्मीवान बन जायगा। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग सभी मिलकर इस बारे में प्रयत्न करेंगे।

इस प्रकार की सेवा के लिए भक्ति-सेना का संगठन होना चाहिए। गाँव-गाँव से ऐसे सेवक निकलने चाहिए और उन्हें

आपका पृष्ठ-बल मिलना चाहिए। घर-घर में सर्वोदय-पात्र हो और गाँव-गाँव में सर्वोदय सेवक हों–यही हमारी योजना है।

आप लोगों को सोचना चाहिए कि आप में एकसूत्रता है या नहीं! अलग-अलग फूलों को एक सूई तथा धागे की सहायता से गूँथकर एकत्र किया जाता है, उसी प्रकार इन देवताओं की नानाविध रंग रूपवाली मूर्तियों का एकत्र होना आवश्यक है। इसलिए हमें देवसेना की तरह सेवकों की एक सेना बनानी होगी। जिसके द्वारा सामूहिकता लायी जा सके।

शिक्षा-संस्था के कार्यकर्ताओं के बीच

हमारे देश में तो स्वराज्य आ गया है। पर अभी वह गाँव-गाँव नहीं पहुँच पाया है। देशवालों ने देश में स्वराज्य लाया, तो गाँव में स्वराज्य लानेवाले गाँववाले ही हो सकते हैं। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो स्वतन्त्रता मिलने पर भी हमारा देश सुखी हुआ, ऐसा नहीं माना जायगा। हमने जो स्वातन्त्र्य प्राप्त किया है, उसका अगर हम सदुपयोग न कर सके, तो हम सुखी नहीं हो सकेंगे।

◆◆◆

अल्याबाड़ा (हालार) २६-११-'५८

लोकाभिमुख होकर सेवा करने का अवसर न खोयें!

इस भूदान-यात्रा के प्रसंग से कई बार हमें गाँवों में रहना पड़ता है, तो कई बार शहरों में! कई संस्थावाले भी मुझे बुलाया करते हैं। इन तीनों जगहों पर मुझे अलग-अलग अनुभव आते हैं।

विषमता का तत्त्वज्ञान

गाँव और शहर के जीवन बिलकुल अलग-अलग हैं। दोनों के बीच ऊँची-ऊँची दीवालें खड़ी हो गयी हैं। दोनों के बीच की यह दूरी इन दिनों कम होने के बदले बढ़ती ही जा रही है। यही स्थिति संस्थाओं की भी है। जिस संस्था को देखता हूँ, वह लोक-विमुख ही होती जा रही है, कोई भी संस्था लोकाभिमुख नहीं दीखती। खास कर स्वराज्य के बाद यह आशा की जाती थी कि गरीबों-अमीरों, शिक्षितों-अशिक्षितों के बीच का अन्तर कम हो जायगा। गरीब और अशिक्षित कुछ ऊँचे उठेंगे और उन्हें ऊँचा उठाने के लिए शिक्षित और श्रीमान कुछ नीचे उतरेंगे। किंतु वह कुछ भी न हो पाया। उल्टे संस्था के लोग, शिक्षित, श्रीमान और बहुत-से जन-प्रतिनिधि अपने आचार एवं विचारों से लोक-विमुख ही होते जा रहे हैं। मुझे यह देख कई बार बहुत ही दुःख होता है। गांधीजी ने खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम, सादगी आदि को इसीलिए चलाया था, जिससे शिक्षित वर्ग और कार्यकर्ता जन-साधारण से एकरूप हो जायँ। इसके लिए उन्होंने काफी प्रयत्न किया। लेकिन उनके बाद इसका कुछ असर रहा, ऐसा नहीं दीखता। इतना ही नहीं, उनके रहते हुए ही आखिर-आखिर में लोगों का, खास कर शिक्षितों का रुख गांधीजी के रुख से अलग ही चलता रहा, जो अबतक चला आ रहा है।

वास्तव में जिसके पास निधि, धन, विद्या, अधिकार आदि जो कुछ हो, वह सारा जनता की सेवा में लगना चाहिए। हम समाज में रहते हैं। हमारा सम्पूर्ण जीवन समाज पर आधारित है। हमें सारी सुख-सुविधाएँ भी जनता द्वारा ही उपलब्ध होती हैं। इसलिए अपना शक्तिसर्वस्व भी जनता की सेवा में ही लगा देना चाहिए। किन्तु आज वैसा नहीं हो रहा है। मनुष्य का सीधा-सीधा सम्बन्ध दूसरे मनुष्य के साथ बहुत कम है। सोचा गया था कि चुनाव के समय लोगों के पास मत माँगने के लिए जाना पड़ेगा और इस तरह हम लोकाभिमुख बन सकेंगे। लेकिन आज चुनाव के समय गाँवों में जाते तो हैं, पर व्यक्ति का सीधा संबंध लोगों से नहीं आता, संस्था का ही आता है। यह अमुक संस्था का व्यक्ति है, इसलिए इसे वोट दे दिया जाय, ऐसा लोग सोचते हैं। इस तरह उसका अपना व्यक्तिगत प्रभाव लोगों पर कुछ नहीं होता। संस्था के पुण्य पर ही वह प्रतिनिधि बनता है, सचमुच यह लोकतंत्र के लिए बहुत बड़ा खतरा है।

चुनाव में जीतकर आये हुए लोगों का भी क्या हाल है? आज तो उनसे लोकाभिमुख होना अर्थात् लोगों की ओर देखना भी सध नहीं पाता। कितने ही लोग दिल्ली जाते हैं, तो वे वहाँ से लौटते ही नहीं हैं! यद्यपि उनके लिए वर्ष में कुल पाँच-छह महीना ही काम रहता है, तो भी वे दिल्ली पहुँचकर पूरी तरह बदल जाते हैं। फिर वहाँ से लौटकर जनता के बीच आना उन्हें पसंद ही नहीं पड़ता। गाँव का समाज और शहर का समाज, शिक्षित भाई और अशिक्षित भाई कहीं एक साथ बैठ जाते हैं, तो वे घोड़े और बैल की तरह अलग-अलग दीख पड़ते हैं। यह अन्तर और भेदभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है। इससे बढ़कर और क्या घातक परिणाम प्रकट होगा? भविष्य-वक्ता की दृष्टि से मैं अभी कुछ नहीं बता रहा हूँ, लेकिन इतना ही कहना चाहता हूँ कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। आखिर आदमी की सहन-शक्ति की भी कोई सीमा हुआ करती है। उससे अधिक वह सहन नहीं कर सकता। दिन-दिन गरीबों पर जो बोझ पड़ रहा है, उन पर जो अत्याचार हो रहे हैं, यह सब अब असह्य है। मैं किन-किन का नाम लूँ? जन-प्रतिनिधि, संस्थावाले, प्रोफेसर, मन्त्री, भक्त, आचार्य, मन्दिर के पुजारी किसीको इसका ध्यान नहीं है। उन्हें यही लगता है कि ये गरीब मजदूर, किसान तो बैल हैं और हम हैं मानव। बैल का खाना अलग है और मानव का अलग। बैल के लिए घास ही चाहिए और उसे वह दिया जाय, तो वह बुरा न मानेगा। याने हमसे उनका सब कुछ अलग ही रहेगा। इनमें और हममें भी समता कभी भी संभव नहीं। दोनों के जीवन की इस विषमता का तत्त्वज्ञान भी इन लोगों ने बना लिया है।

जब मैं ऐसी संस्थाओं में इस आशय के गीत सुनता हूँ कि हमें सबके साथ जोड़ लें ('युक्त करो हे सवार संगे···'), तब मुझे इतना ही समाधान होता है कि भले ही इस गीत का उनके वर्तमान जीवन से कुछ भी संबंध न हो तथा अपने दैनिक व्यवहार में वे उसका क्रियात्मक प्रयोग न करते हों, फिर भी ऐसा गाया जाता है, इसलिए संभव है कि मरते समय इन्हें कुछ पछतावा हो जाय और मरते समय की यही वासना उन्हें अगले जन्म में गरीबों के साथ एकरस बनाने में कुछ मदद दे दे। बाकी वह तो गीत के सिवा कुछ भी नहीं रहता।

साधारणतः भक्तों और संगीतज्ञों के भजनों में फरक होता है। संगीतज्ञों के भजन में 'भक्ति' नहीं, 'संस्कृति' हुआ करती है। जहाँ पश्चिम के मजदूरों को दिनभर की थकान मिटाने के लिए शराब की आवश्यकता होती है, वहाँ भारत के मजदूर भजनानन्द में ही मस्त हो जाते हैं। इसी मस्ती को Culture (संस्कृति) कहा जाता है। मीरा, नरसी मेहता या कबीर के भजन गानेवालों को यह नहीं कहा जायगा कि 'ये

भजन गा रहे हैं।' बल्कि यही कहा जायगा कि 'भूपाली, कल्याण या अकल्याण गाते हैं।' भजन तो मीरा या तुलसी के होंगे, लेकिन उनके अन्दर लिखी हुई बातों का गानेवाले से कुछ भी संबंध न रहेगा। भले ही वे सुन्दर राग गा देंगे, पर उसमें भक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं रहेगा, हृदय को द्रवित करने, उसमें करुणा का स्रोत बहाने जैसा कुछ भी नहीं रहेगा।

नरदेह मूल्यवान है

'भणे नरसैयो के तत्त्व दर्शन विणा
रत्न चिन्तामणि जन्म खोयो।'

अर्थात् हम अपना जन्म व्यर्थ ही खो रहे हैं। यह नरदेह बहुत ही मूल्यवान है। हमारा एक-एक पल, एक-एक क्षण बीत रहा है। ऐसी स्थिति में हम अपनी यह देह सार्थक करने के लिए क्या कर रहे हैं? भजन कितना भी विचार-प्रधान क्यों न हो, लोग उसके विचारों पर ध्यान न देकर उसके राग के बारे में ही चर्चा करते देखे जाते हैं। साहित्य की तरह भजन का भी रस चखा जाता है, उसका भी आस्वाद लिया जाता है। संस्कृत में एक श्लोक आता है :

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

अर्थात् मूर्ख लोगों का समय निद्रा, कलह और व्यसन में ही बीतता है, जब कि पण्डितों का समय काव्य-शास्त्र के विनोद में बीतता है। वह भी भोग का विषय है, आनन्द का विषय है। लोग 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखने जाते हैं, तो यही आलोचना किया करते हैं कि उसमें करुणरस जितना निखर उठना चाहिए, उतना नहीं निखरा। लेकिन आश्चर्य की बात है कि हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा का उन्हें तनिक भी स्पर्श नहीं हो पाता। जब ऐसे लोगों को देखता हूँ, तो मुझे उनका जीवन नीरस मालूम पड़ता है। ऐसा जीवन वे किस तरह जी रहे होंगे, इस बात की कल्पना करना भी मेरे लिए कठिन हो जाता है। वह सर्वथा निःसार जीवन है, जिससे किसी भी प्रकार मानवता का विकास नहीं होता, अधिक से अधिक रस चखने का ही विचार किया जाता है।

एक कवि ने लिखा है कि जिसे साहित्य, संगीत और कला का स्पर्श भी न हो, वह बिना पूँछ और बिना सींग का पशु ही कहा जायगा :

'साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।'

इसीपर एक बार एक जगह चर्चा भी चली कि ये सभी लोग साहित्य-संगीत-विहीन हैं। इन्हें साहित्य कुछ समझ में ही नहीं आता और न संगीत गाने पर आकर्षण ही होता है। कला का रस तो अभ्यस्त कानों को ही मिल सकता है। इसलिए ये लोग साक्षात् पुच्छ-विषाणहीन पशु हैं। जब मैंने यह सुना, तो मुझे खेद हुआ। फिर मैंने इसपर उनसे कहा कि यह सच है कि साहित्य-संगीतविहीन मानव पुच्छ-विषाणहीन पशु है, पर जिनमें साहित्य और संगीत है, वे पुच्छ-विषाणयुक्त पशु हैं। इससे अधिक इसका कोई अर्थ नहीं है। मैं कह रहा था कि इस तरह पढ़े-लिखे लोगों का काव्य-शास्त्र-विनोद में ही समय चला जाता है, तो उन्हें यह देखने की जरूरत ही नहीं रहती कि काम कैसे चलता है। वे सोचते हैं, आज का दिन बीत गया, यह बहुत अच्छा हुआ। एक दिन बीता, दूसरा बीता और इसी तरह सारा जीवन भी बीत गया! उन्हें समय भारभूत हो जाता है, इससे किस तरह मुक्ति हो, यह बोझ कैसे हटे—यही चिन्ता करते हुए वे एक-एक दिन जैसे-तैसे गुजारते हैं। एक ओर ऐसा जीवन बीतता है, तो दूसरी ओर उन बेचारे मजदूरों का जीवन देखिये! वे दस-दस, बारह-बारह घंटे काम करते हैं, उनका शरीर घिसता है। उन्हें पूरा पोषण भी नहीं मिल पाता। फिर भी सुबह उठकर काम के लिए जाना पड़ता है। फिर इन्हें मेहनत के अनुसार मजदूरी भी नहीं मिलती। एक ओर यह स्थिति है, तो दूसरी ओर कम से कम काम कर अधिक से अधिक पैसा और सुविधाओं की माँग की जाती है! इसी तरह लड़के कालेज में पढ़ते हैं, तो उनपर कितना अधिक खर्च पड़ता है। फिर बी० काम० होकर भी बेकाम हो जाते हैं। कालेज में कामर्स पढ़ने पर भी व्यापार नहीं कर सकते। शहर के कृषि कालेज में पढ़ कर भी फसल पैदा करना नहीं जानते। इस तरह स्पष्ट है कि आज शिक्षा का गाँव की स्थिति के साथ कुछ भी संबंध नहीं रह गया है।

हिन्दुस्तान को बनाने में किनका हाथ है?

ऐसी स्थिति में जब सवाल पूछे जाते हैं कि शिक्षक, सेवक और साधक के धर्म क्या हैं, तो मुझे लगता है कि इन शब्दों का विवेचन करने से भी क्या लाभ? जब कोई सच्चा शिक्षक, सेवक या साधक हो, तो उसके बारे में चर्चा करना भी ठीक कहा जा सकता है। हिन्दुस्तान में शिक्षकों को 'आचार्य' कहा जाता था। इन्हीं आचार्यों ने सारे हिन्दुस्तान को गढ़ा। हिन्दुस्तान के निर्माण में बादशाह या राजा-महाराजाओं का भाग नहीं, बल्कि बादरायण, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि का ही हिस्सा रहा है। उनके पूर्व तथा बाद भी आचार्य हुए और उनका भी राष्ट्र के निर्माण में बहुत बड़ा हाथ रहा, लेकिन हम लोग उनके नाम नहीं जानते। वे लोग अपना जीवन श्रम पर आधारित रखते और साधारण जनता से अधिक त्याग और सादगी का जीवन बिताते थे। जो जितना बड़ा पण्डित होता, उतना ही अधिक त्यागी दीख पड़ता था। इसके विपरीत आज तो कोई आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी से पास होकर आता है, तो वह सबसे अधिक वेतन माँगता है। वास्तव में उसे तो यह कहना चाहिए कि मेरे शिक्षण के लिए समाज ने बहुत अधिक व्यय किया है, इसलिए अब मैं अधिक वेतन न लूँगा। मुझे काफी ज्ञान मिल चुका है, अब मुझे पैसे की जरूरत नहीं है। स्वास्थ्य किस तरह पाया जाय, यह मैं अधिक जानता हूँ। जिन्हें इसका विशेष ज्ञान नहीं, उन्हें अधिक वेतन देना चाहिए। ताकि वे ज्ञान प्राप्त कर सकें। किन्तु इसके विपरीत आज कहा जाता है कि अधिक पढ़े-लिखे लोगों को अधिक वेतन मिलना चाहिए। ध्यान रहे कि हमारी संस्कृति कहती है कि जो जितना अधिक ज्ञानी हो, उसे उतना ही अधिक त्यागी होना चाहिए, नम्र होना चाहिए। आज ऐसे लोग बहुत ही कम रह गये हैं। पहले लोग आठ-आठ घंटे वेदान्त, तर्कशास्त्र आदि पढ़ाते थे। सुबह चार घंटे, शाम को चार घंटे। एक दिन भी वेदाध्ययन में अनध्याय हो जाय, तो वह व्रतभंग माना जाता था, जब कि आज युनिवर्सिटियों में इस पर चर्चा चलती है कि प्रोफेसरों को सप्ताह में काम के घंटे १८ हों या २१। भगवान ने साल में ३६५ दिन दिये हैं। उनमें छुट्टियाँ बाद कर देने पर २०० तो हो ही जाते हैं। अब २४ घंटे का दिन भी २॥-३ घंटे का हो गया! फिर भी वेतन कितना अधिक होता है! आखिर यह सब क्या है? क्या यह शिक्षण है या ज्ञान? क्या यह शिक्षितों का लक्षण कहा जा सकता है? पहले के शिक्षक आठ-आठ घंटे काम करते थे। वे घर-बार छोड़कर गाँव-गाँव पहुँचते और लोगों को ज्ञान देते थे। इस तरह उन दिनों चलती-फिरती युनिवर्सिटियाँ चलती थीं। किन्तु आज ऐसा कुछ भी नहीं है। यह देख मुझे बड़ा ही दुःख हो रहा है। आज का व्याख्यान जरा दुःख भरा ही हुआ। इसलिए आप को जितना अच्छा लगे, उतना ले लें, बाकी छोड़ दें। ०००

अ० भा० गो-सेवा संघ के कार्यकर्ताओं के बीच

खूड (राज०) १३-३-'५९

सरकारी और सामाजिक स्तर पर गो-रक्षा का प्रश्न हल किया जाय

महात्मा गान्धी की एक पुस्तक है। उसका नाम है India of my dreams —'मेरे सपनों का हिन्दुस्तान'। आज मैं वही पुस्तक देख रहा था। उसमें लिखा है—'Cow protection is not an easy thing. Much money is wasted in its name. Nevertheless in the absence of "अहिंसा" the Hindus have become destroyers instead of saviour of the cow. It is even more difficult than the removal of foreign rule from India.'

'गो-सेवा का कार्य स्वराज्य-प्राप्ति से भी अधिक कठिन है।' गो-सेवा के बारे में बापू के ऐसे विचार थे। यद्यपि यह ठीक है कि स्वराज्य प्राप्त हो गया, फिर भी स्वराज्य की जो मूलभूत व्याख्या है, उस अर्थ में उसे बनाना अभी बाकी है।

हमें इस गलतफहमी में नहीं रहना चाहिए कि स्वराज्य हमारे ही आन्दोलन से प्राप्त हुआ है। दुनिया की परिस्थिति ने हमारा साथ दिया। इसीलिए स्वराज्य-प्राप्ति में हम कामयाब हुए। ब्रह्मदेश या सीप सिलोन ने स्वराज्य के लिए आन्दोलन किये, ऐसा नहीं कहा जायगा। फिर भी उन्हें स्वराज्य मिला। इसी प्रकार हमारे आन्दोलन से ताकत प्रकट हुई, लेकिन साथ-साथ दुनिया की परिस्थिति भी बदली। इसीसे स्वराज्य प्राप्त हुआ है। यह हमें समझ लेना चाहिए।

गो-सेवा के काम में दुनिया की परिस्थिति सहायक होगी, यह संभव नहीं है। डालडा आदि के कारण इस काम में और भी प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होनेवाली हैं।

सरकार की दुहरी नीति

सरकार एक समग्र वस्तु है। वह एक ही ढंग से नहीं सोच सकती। वह मिल का भी सोचती है और खादी का भी। मिल को कपड़े के खयाल से मान्यता देती है और बेकारी-निवारण की दृष्टि से खादी को भी उपयोगी मान लेती है। सरकार चाहती है कि यंत्रोद्योग भी हो और ग्रामोद्योग भी। तेलघाणी भी चले और ऑयल मिल भी चले। इसीलिए वह भैंस का दूध भी लेगी, गाय का दूध भी लेगी और बकरी का दूध भी ले लेगी। जितने प्रकार का दूध उपलब्ध हो, उनका उपयोग करने में सरकार को कोई आपत्ति नहीं है। वह एक हद तक उस काम में मदद ही करेगी। वह कहेगी कि आप दूध बढ़ाइये। इसलिए भैंस के खिलाफ सरकार से 'प्रोटेक्शन' (रक्षण) मिलेगा, ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए। वैसी आशा करना गलत है। उसमें पुरुषार्थहीनता है।

गाय को लोक-संरक्षण चाहिए

गाय का हमारी योजना में एक विशेष स्थान है। वह स्थान उसका सरकारी योजना में नहीं है। इसलिए गो-रक्षण का उत्तरदायित्व हम पर ही आता है। गाय को सरकार की ओर से मदद मिल सकती है, संरक्षण नहीं, ऐसा जब मैं कहता हूँ तब इन दोनों में क्या अन्तर है, यह आपको समझ लेना चाहिए। सरकार खादी को मदद करेगी, परंतु उसे संरक्षण देने को तैयार नहीं होगी। वही बात गाय के लिए है। लेकिन आज गाय का काम केवल मदद से नहीं हो सकता। उसके लिए तो संरक्षण ही चाहिए। वह देने में सरकार असमर्थ है। इसलिए जनता से ही गाय को संरक्षण मिलना चाहिए। खादी की भाँति गाय को मध्यबिन्दु मानकर हम अपने विचार खड़े करें, तो लोग संरक्षण भी देंगे और मदद भी। उसके लिए हमें जनता में विचार-प्रचार करना होगा।

गो-संरक्षण की बात हम सोचते हैं, तो हमें गाय के अतीत को भी ध्यान में ले लेना चाहिए। वह पहले जंगल में थी, अब मनुष्यों के बीच आयी है। अब उसका जीवन मनुष्य के हाथों में है। मनुष्य ने सिंहों को खतम कर दिया। गिरनार के जंगलों में सरकार की कृपा से कुछ सिंह बच गये हैं। फिर भी उनकी बहुत-सी ऐसी जातियाँ हैं, जो धरती से बिलकुल खतम हो गयी हैं। उसी प्रकार मनुष्य चाहे, तो गाय को भी खतम कर सकता है। गाय की भाँति चींटी को खतम कर देना मनुष्य के वश की बात नहीं है। क्योंकि चींटी स्वावलम्बी है। आप उसे खतम करेंगे, तब भी वह टिकनेवाली है। जो ताकत चींटी में है, वह सिंह में नहीं है, गाय में भी नहीं है। सिंह और गाय परावलंबी हैं। इसलिए यदि गाय को बचाना ही है, तो हमें अपनी योजना में मनुष्य का हित गौण समझ करके गाय को प्रधानता नहीं देनी चाहिए। सच तो यह है कि गाय मनुष्य के लिए भाररूप नहीं हो सकती। योजनापूर्वक काम करने से वह मददरूप ही होगी। आज गाय के लिए कितनी जमीन रखी है? बेकार जमीन पड़ी है। उसीमें गाय चरती है। इससे उस बेचारी की क्या हालत होती होगी? जहाँ कम बारिस हो, वहाँ बेकार जमीन से गाय का निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिए हमें चाहिए कि अभी जिस जमीन में हम खेती करते हैं, उसी जमीन को कुछ समय के लिए गाय का चरागाह बना दें और पड़ती जमीन में पैदावार करें। इस प्रकार रोटेशन रखकर योजना करने से ही गाय और मनुष्य के बीच का खतरा कम होगा। हम गो-भक्त हैं। हम गाय को खा नहीं सकते। इसलिए हमें वैसी योजना करनी ही होगी।

गो-रक्षा की प्राकृतिक योजना

दुग्धाहार, मांसाहार और केवल शाकाहार—तीन तरह के आहार होते हैं। शाकाहारवाली योजना में कम-से-कम जमीन लगती है। दूधवाली योजना में ज्यादा जमीन लगती है और गोश्तवाली योजना में उससे भी अधिक जमीन लगती है। इसलिए अब आगे मांसाहार के लिए अवकाश नहीं रह जायगा। जैसे-जैसे मनुष्य-संख्या बढ़ेगी, वैसे-वैसे जमीन का रकबा घटेगा। जमीन का रकबा घटने से मांसाहार अपने आप कम हो जायगा। मत्स्याहार टिक सकता है। क्योंकि मछलियाँ जमीन पर नहीं लगतीं, वे पानी में ही रहती हैं। जनसंख्या की वृद्धि के कारण दुग्धाहार भी कम करने की स्थिति पैदा हो सकती है। इसलिए हमें यह समझना चाहिए कि गो-रक्षा का अर्थ है—मनुष्य को अपनी जाति पर संयम रखना। जनसंख्या बढ़ती रहने से गो-रक्षण असंभव हो जायगा। फिर गाय के साथ हमारा मुकाबला होने लग जायगा। यह बात बहुतों के ध्यान में नहीं आती। इस तरफ ध्यान जाना आवश्यक है।

ग्रामदान की माँग मैं इसीलिए कर रहा हूँ कि हमारा समग्र जीवन विकसित हो। बापू ने समग्रता का विचार रखा था। वह समग्र जीवन की योजना थी। ग्राम-स्वराज्य की योजना के आधार पर हमें समग्र जीवन की दृष्टि से ही सोचना है। जहाँ ग्रामदान होगा, वहाँ ग्राम-संकल्प होगा, वहाँ गाय के रक्षण का भी विचार होगा। ग्राम-स्वराज्य में जैसे खादी आयेगी, ग्रामोद्योग आयगा, वैसे ही गो-रक्षण का काम भी होगा।

गाय के बारे में भी हमें जरा वैज्ञानिक तरीकों से सोचना होगा। इसलिए हमारी योजना में समग्र सेवा का विचार होना चाहिए। एकांगी चिंतन से काम नहीं चल सकता। गाय को कितना खिलाना-पिलाना है, इसी पर अगर हमारा चिंतन चलता रहा, तो संभव है कि गाय गाँव के लिए बोझ बन जाय। गाय के लिए कितनी जमीन दे सकते हैं, इसके साथ-ही-साथ हमें कितना तेल, कितना कपास और कितना कपड़ा चाहिए, उसके लिए भी जितनी जमीन की जरूरत हो, वह सोच लेना होगा।

हम कितना भी क्षेत्र निश्चित करें, तो भी भैंस की जरूरत रह ही जायगी। आज तो एक हजार में से ३०० मनुष्य गाय का दूध लेते हैं। शेष लोगों का गाय के जीवन के साथ क्या संबंध है? गाय के लिए तो लोक-संरक्षण दिलवाना है, तो सभी लोग गो-रक्षा का विचार कबूल करें, ऐसा वातावरण निर्माण करना होगा। ◆◆◆

हटुंडी २७-२-'५९

सर्व-सेवा-संघ की बैठक में

सर्व-सेवा-संघ ऐक्य का सूत्र बने !

परिसंवाद में आप लोगों ने अनेकों विषयों पर चर्चाएँ की हैं। मैं अब इस समय आपके सामने और कोई नयी चीज कहूँगा, ऐसी बात नहीं है। अभी तो सिर्फ मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि देश-हित के लिए काम करनेवाली भिन्न-भिन्न राजनैतिक संस्थाएँ एकत्र हो जायँ। यही वर्तमान की सबसे बड़ी आवश्यकता और अपने युग की आकांक्षा है। इस आकांक्षा को मूर्तरूप देने में जो समर्थ होंगे, वे ही सबको सूत के समान पिरो सकेंगे। यह काम सर्व-सेवा-संघ कर सके, तो इसे करना चाहिए।

सर्व-सेवा-संघ के लिए सभी पक्षों में अप्रतिकूलता है। इसके लिए श्रद्धायुक्त अनुकूलता न होने पर भी अप्रतिकूलता उत्पन्न होना ही एक पूँजी है। इसी पृष्ठबल को पाकर यह समस्त जनता के समक्ष ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकता है, जिससे सभी के हृदयों में ठंढक पहुँचे। पानी किसे नहीं चाहिए? शेर और गाय—दोनों पानी को प्यार करते हैं। पानी की तरह ही हमारे कार्यक्रम को ताकत मिलती है, तो राष्ट्र में बहुत बड़ा काम होगा।

अहिंसा का राज्य हो

सर्वोदय-पात्र जैसा छोटा सा कार्यक्रम सर्वमान्य हो सकता है। सर्वमान्यता ईश्वर के पहचान की चीज है। आकाश, अन्न, जल आदि सभी को चाहिए। प्रेम भी सभी को चाहिए। मनुष्य का मनुष्य के प्रति तथा राष्ट्र के प्रति रहे हुए प्रेम का सम्मति-चिह्न है—यह सर्वोदय-पात्र! इस (सर्वोदय-पात्र) के बारे में काफी विचार हैं। उनको शुद्ध से शुद्ध रूप मिलना चाहिए। घर-घर में प्रवेश करने का हमारा यही माध्यम है।

अनादिकाल से अहिंसा का विचार प्रचारित होता रहा है। पर अभी तक कभी अहिंसा का राज्य नहीं हुआ। हम चाहते हैं—अहिंसा का राज्य। अहिंसा के राज्य में करुणामूलक साम्य-योग की प्रक्रिया चलनी चाहिए। मुझसे अधिक दुःखी की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट हो, यही इसकी कीमिया है। दूसरों के दुःख-निवारणार्थ हमारा प्रयत्न होते रहने से कहीं भी मनुष्य दुःखी नहीं रहेंगे। फिर पशुओं की ओर हमारा ध्यान जायगा। इसीसे स्थिर साम्य तथा निर्दोष साम्य होगा।

बापू के समस्त रचनात्मक कार्यक्रम ग्रामस्वराज्य को महेनजर रखते हुए चलाने चाहिए। अन्यथा हमारी प्रवृत्तियों से भी पर्याप्त शोषण हो सकता है। हमें शोषणरहित समाज कायम करना है। उसके लिए भी अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करनी होंगी। आज तो सर्वत्र भय का वातावरण है। हमारे कार्यक्रमों से उस वातावरण में आमूलचूल परिवर्तन होना चाहिए और लोगों को प्रतीत होना चाहिए कि हमारी सारी प्रक्रिया करुणामूलक है।

'कोऑपरेटिव' के सम्बन्ध में आजकल काफी चर्चा चल रही है। 'कोऑपरेटिव किया जाय या न किया जाय' इस बारे में आर्थिक दृष्टि से हमारा कोई आग्रह नहीं है। आज के इकनॉमिक्स परस्पर-विरोधी दृष्टि के हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि एक गाँव में एक प्रयोग हो और दूसरे गाँव में दूसरा। निर्माण-कार्य का दूराग्रहपूर्वक प्रयोग करने से 'ग्रामदान' के काम में सहूलियत होगी। लोगों में निर्भयता उत्पन्न हो, यही ग्रामदान की सर्व-सुलभ व्याख्या है। 'सुलभीकृत ग्रामदान' स्वतन्त्र मूल्यवाली करुणा है।

आज रचनात्मक कार्य के लिए सरकारी मदद मिल रही है, वह हमें पंगु कर सकती है। यद्यपि यह सच है कि हमें पंगु बनाने के लिए मदद नहीं दी जा रही है, परन्तु वैसा होना असंभव नहीं है। इसलिए हमें अपने कार्य की बुनियाद को मजबूत रख कर ही मदद लेने के बारे में सोचना चाहिए। अन्यथा अभी मिलनेवाली सरकारी मदद ही हमारे लिए ऑक्सीजन न सिद्ध हो जाय।

शान्ति-सेना भक्ति-सेना है

शान्ति-सेना कहने से अर्थ पूरा साफ नहीं होता। मैंने इसका दूसरा नाम भक्ति-सेना रखा है। शान्ति-सैनिक नित्य सेवा करते हुए विशेष अवसर पर अपना बलिदान करने के लिए तैयार रहें। ग्रामदान के बिना शान्ति-सेना नहीं हो सकती और शान्ति-सेना के बिना ग्रामदान भी नहीं हो सकता। मालिकों को विचार समझाना है और उन्हें निर्भय भी बनाना है। स्वामित्व-निरसन से सारे झगड़े समाप्त हो जायेंगे। आजकल के झगड़े पक्ष-परिणामी होते हैं। शान्ति-सैनिकों के पक्षमुक्त या पक्षातीत होने से उन झगड़ों को साफ किया जा सकेगा।

हम मकान बनाते जा रहे हैं। ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करना हमारा उद्देश्य है। ग्रामदान, शान्तिसेना, सर्वोदय-पात्र आदि विविध कार्यक्रम उसी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हैं। इनके बारे में भी हमारा कोई आग्रह नहीं है। हम आग्रहमुक्त हैं। आग्रह रखने से सिवाय विरोध के कुछ भी नहीं मिलेगा। हम आग्रहमुक्त होकर कार्य करें। फिर अगर कुछ काम कांग्रेस-वाले उठा लें, और कुछ कम्युनिस्टवाले उठा लें, तो हमारा क्या बिगड़ता है? इन दिनों मैं अपने विचारों को 'गांधियन थियरी' नहीं कहता। हमें नाम करना क्या है? जरूरत है काम की। इसलिए पहले ग्राम-स्वराज्य बना लें, फिर खेती आदि के सम्बन्ध में तय करें, तो हमारे कार्यक्रमों से सभी सहमत हो जायेंगे। ◆◆◆

अनुक्रम

१. विश्व-नागरिकता का विचार··· रामगढ़ २० मार्च '५९ पृ० ३०५
२. देश स्वराज्य की सार्थकता··· पाणशिला १४ दिसम्बर'५८ ,, ३०७
३. लोकाभिमुख होकर-सेवा··· अल्यावाड़ा २६ नवम्बर'५८ ,, ३०९
४. सरकारी और सामाजिक स्तर··· खूड १२ मार्च '५९ ,, ३११
५. सर्व-सेवा-संघ ऐक्य का सूत्र··· हटुंडी २७ फरवरी '५९ ,, ३१२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।